[११]

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते

'वेदारम्भ' उस को कहते हैं—'जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग[१] चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना।

समय—जो दिन उपनयन-संस्कार का है, वही वेदारम्भ का है। यदि उस दिवस में न हो सके, अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे । यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ।

विधि—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो, उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके, शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता, यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे ।

तत्पश्चात् पृष्ठ ४-११ तक **ईश्वरस्तुति,**[२] **प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण** करके, पृष्ठ १८-१९ में **(भूर्भुवः स्वः०)** इस मन्त्र से अग्न्याधान, **(ओं अयन्त इध्म०)** इत्यादि ४ चार मन्त्रों से समिदाधान, पृष्ठ २० में **(ओम् अदितेऽनुमन्यस्व०)** इत्यादि ३ तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और **(ओं देव सवितः०)** इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटकाके पृ० १९ में **(उद्बुध्यस्वाग्ने०)** इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करके, प्रदीप्त समिधा पर, पृष्ठ २०-२१ में **आघारावाज्यभागाहुति** ४ चार, **व्याहृति आहुति** ४ चार और पृष्ठ २२-२३ में **आज्याहुति** ८ आठ मिलके १६ सोलह आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान[३] होमाहुति दिलाके, पश्चात् पृष्ठ २१ में **व्याहृति आहुति** ४ चार और **स्विष्टकृद् आहुति** १ एक, तथा पृष्ठ २१ में **प्राजापत्याहुति**

---

१. **अङ्ग**—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष । **उपाङ्ग**—पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त । **उपवेद**—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व-वेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । **ब्राह्मण**—ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ । **वेद**—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़े ।

२. जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे, उस को पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करना आवश्यक नहीं ।

३. 'प्रधान होम' उस को कहते हैं, जो संस्कार में मुख्य करके किया जाता हो।

१ एक मिलकर छह आज्याहुति बालक के हाथ से दिलानी । तत्पश्चात्—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मां कुरु । यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि । एवं माꣳ सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना ।

तत्पश्चात् बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करके, पृष्ठ २० में लिखे प्रमाणे **(अदितेऽनुमन्यस्व०)** इत्यादि ४ मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसिञ्चन करके, बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर, घृत में भिजोके एक समिधा हाथ में ले—

ओम् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभि-र्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य-निराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥

समिधा वेदीस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देना। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी समिधा छोड़े ।

पुनः ऊपर दिये प्रमाणे **(ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं०)** इस मन्त्र से वेदीस्थ अग्नि को इकट्ठा करके पृष्ठ २० में लिखे प्रमाणे **(ओम् अदितेऽनुमन्यस्व०)** इत्यादि ४ चार मन्त्रों से कुण्ड के सब ओर जलसेचन करके बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठके, वेदी के अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ा सा तपाके हाथ में जल लगा—

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥१॥
ओम् आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥
ओम् अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं तन्म आपृण ॥४॥
ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु ॥५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥
ओं मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ ॥७॥

इन सात मन्त्रों से सात वार किञ्चित् हथेली उष्ण कर, जल स्पर्श करके मुख स्पर्श करना । तत्पश्चात् बालक—

ओं वाक् च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से मुख ।
ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार ।

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्र ।
ओं श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ॥ इस मन्त्र से दोनों कान ।
ओं यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥[३] इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे ।

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु ।
मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु ।
मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ।
यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् ।
यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् ।
यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तरबाजू की ओर जाके, जानू को भूमि में टेकके पूर्वाभिमुख बैठे। और आचार्य बालक के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे ।

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीम् भो अनुब्रूहि ॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि—'हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार, पश्चात् तीन महाव्याहृति, तत्पश्चात् सावित्री—ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये'।

तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रखके अपने हाथ से बालक के दोनों हाथों की अञ्जलि को पकड़के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन वार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ।

प्रथम वार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक-एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से कराके, दूसरी वार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

एक-एक पद से यथावत् धीरे-धीरे उच्चारण करवाके, तीसरी वार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

धीरे-धीरे इस मन्त्र को बुलवाके, संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थ—(ओ३म्) यह मुख्य परमेश्वर का नाम है, जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं। (भूः) जो प्राण का भी प्राण, (भुवः) सब

दु:खों से छुड़ानेहारा, (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति करानेहारा है, (तत्) उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करनेयोग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेहारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप है, (तत्) उस को हम लोग (धीमहि) धारण करें। (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे।

इसी प्रयोजन के लिए इस जगदीश्वर ही की स्तुतिप्रार्थनोपासना करना और इस से भिन्न किसी को उपास्य, इष्टदेव, उस के तुल्य वा उस से अधिक नहीं मानना चाहिए।

इस प्रकार अर्थ सुनाये। पश्चात्—

ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओम् इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर, चिकनी, प्रथम बनाके रखी हुई मेखला* को बालक की कटि में बांधके—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥

इस मन्त्र को बोलके दो शुद्ध कोपीन, दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उन में से एक कोपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे। तत्पश्चात् आचार्य दण्ड[१] हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

---

* ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुषसंज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिए।

१. ब्राह्मण के बालक को खड़ा करके भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा बिल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक दण्ड प्रमाण है। और वे दण्ड चिकने सूधे हों, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों। और एक-एक मृगचर्म उनके बैठने के लिए, एक-एक जलपात्र, एक-एक उपपात्र और एक-एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिए।

ओं यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् ।
तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

इस मन्त्र को बोलके बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे। तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ[1] ॥१॥ अपोऽशान ॥२॥ कर्म कुरु ॥३॥
दिवा मा स्वाप्सीः ॥४॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥५॥
द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥६॥
आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥७॥

क्रोधानृते वर्जय ॥८॥ मैथुनं वर्जय ॥९॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥१०॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥११॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥१२॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्त्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नान-सन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥१३॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥१४॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥१५॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥१६॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्र-धारणं वर्जय ॥१७॥ अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव॥१८॥ तैलाभ्यङ्ग-मर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥१९॥ नित्यं युक्ताहार-विहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥२०॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥२१॥[1] मेखलादण्डधारणभैक्ष्य-चर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादन-विद्यासञ्चयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥२२॥

अर्थ—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥१॥ **नित्य सन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर** ॥२॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥३॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥४॥ आचार्य के आधीन रहके नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥५॥ एक-एक साङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह-बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जब तक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें, तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥६॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर । परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे,

---

१. 'असौ' इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे ।

उस को तू कभी मत मान, और उस का आचरण मत कर ।।७।। क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ।।८।। आठ* प्रकार के मैथुन को छोड़ देना ।।९।। भूमि में शयन करना, पलङ्ग आदि पर कभी न सोना ।।१०।। कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर ।।११।। अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ।।१२।। रात्रि के चौथे पहर में जाग, आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ।।१३।। क्षौर मत करा ।।१४।। मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ।।१५।। बैल, घोड़ा, हाथी, ऊंट आदि की सवारी मत कर ।।१६।। गाम में निवास, जूता और छत्र का धारण मत कर ।।१७।। लघुशङ्का के विना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न करके, वीर्य को शरीर में रखके निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्ता कर ।।१८।। तैलादि से अङ्गमर्दन, उबटना, अतिखट्टा इमली आदि, अतितीखा लालमिर्ची आदि, कसेला हरड़ें आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ।।१९।। नित्य युक्ति से आहार-विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो ।।२०।। सुशील, थोड़ा बोलनेवाला, सभा में बैठनेयोग्य गुण ग्रहण कर ।।२१।। मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातःसायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के कर्म, और जो निषेध किये वे नित्य न करने के हैं ।।२२।।

जब यह उपदेश पिता कर चुके, तब बालक पिता को नमस्कार कर, हाथ जोड़ के कहे कि—'जैसा आपने उपदेश किया, वैसा ही करूँगा ।'

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके, माता-पिता, भाई-बहिन, मामा, मौसी, चाचा आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करें, उन से भिक्षा** मांगे और जितनी

---

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है, जो इन को छोड़ देता है, वही ब्रह्मचारी होता है ।

** ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो ''भवान् भिक्षां ददातु'', और जो स्त्री से मांगे तो ''भवती भिक्षां ददातु'', और क्षत्रिय का बालक ''भिक्षां भवान् ददातु'' और स्त्री से ''भिक्षां भवती ददातु'', वैश्य का बालक ''भिक्षां ददातु भवान्'' और ''भिक्षां ददातु भवती'' ऐसा वाक्य बोले ।

भिक्षा मिले, उसे आचार्य के आगे धर देनी । तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ा सा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को दे देवे । और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े ।

तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठाके पृष्ठ २३-२४ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान को करना । तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे । पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और **गृहाश्रम-संस्कार में लिखा सन्ध्योपासन आचार्य बालक के हाथ से करावे ।**

और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् पृष्ठ १३ में लिखे प्रमाणे भात बना, उस में घी डाल पात्र में रख पृष्ठ १९ में लिखे प्रमाणे समिदाधान कर, पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और व्याहृति आहुति ४ चार, दोनों मिलके ८ आठ आज्याहुति देनी ।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा होके पृष्ठ ७१ में लिखे प्रमाणे **(ओम् अग्ने सुश्रवः)** इस मन्त्र से ३ तीन समिधा की आहुति देवे । तत्पश्चात् बालक बैठके यज्ञकुण्ड के अग्नि से अपना हाथ तपा, पृष्ठ १८ में लिखे प्रमाणे पूर्ववत् मुख का स्पर्श करके अङ्गस्पर्श करना ।

तत्पश्चात् पृष्ठ १३ में लिखे प्रमाणे बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिए देवे । पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेके, उस में घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ इदं सदसस्पतये इदन्न मम ॥१॥
ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा ॥ इदं सवित्रे इदन्न मम ॥२॥
ओम् ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ इदम् ऋषिभ्यः इदन्न मम ॥३॥

इन ३ तीन मन्त्रों से तीन और पृष्ठ २१ में लिखे प्रमाणे **(ओं यदस्य कर्मणो०)** इस मन्त्र से चौथी आहुति देवे । तत्पश्चात् पृष्ठ २१ में लिखे प्रमाणे **व्याहृति आहुति** ४ चार और पृष्ठ २२-२३ में **(ओं त्वन्नो०)** इन ८ आठ मन्त्रों से ८ आठ आज्याहुति मिलके १२ बारह आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठके, पृष्ठ २३-२४ में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

'अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥'

ऐसा वाक्य बोलके आचार्य का वन्दन करे । और आचार्य—

'आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥'

ऐसा आशीर्वाद देके, पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक्-पृथक् बैठके करें ।

तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके, संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों, उन्हें यथायोग्य भोजन करा, तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जने बालक को निम्नलिखित—

'हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवान् अरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥'

ऐसा आशीर्वाद देके अपने-अपने घर को चले जायें ।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ तीन दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सायं पृष्ठ ७१ में लिखे प्रमाणे (**अग्ने सुश्रवः०**) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ १८ में लिखे प्रमाणे मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा ३ तीन दिन तक (**सदसस्पतिं०**) इत्यादि पृष्ठ ७६ में लिखे प्रमाणे ४ चार स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और ३ तीन दिन तक क्षार-लवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे ।

तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे ।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥१॥
इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥२॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥३॥
ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्योब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥४॥
ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ॥५॥
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥६॥

—अथर्व० कां० ११। सू० ५।।

संक्षेप से भाषार्थः—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप

रखके **३ तीन रात्रिपर्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि** सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर, उस के आत्मा के भीतर गर्भरूप विद्या स्थापन करने के लिये उस को धारण कर और उस को पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है, तब उस को देखने के लिए सब विद्वान् लोग सम्मुख जाकर बड़ा मान्य करते हैं ।।१।।

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होम कर, ब्रह्मचर्य के व्रत का नियमपूर्वक सेवन करके, विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है, **वह जानो पृथिवी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सब का पालन करता है ।** क्योंकि वह समिदाधान मेखलादि चिह्नों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके, इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ।।२।।

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित होके (दीर्घश्मश्रुः=)४० वर्ष तक दाढ़ी, मूंछ आदि पञ्च केशों का धारण करनेवाला ब्रह्मचारी होता है, वह पूर्व समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है। वह सब लोकों का संग्रह करके वारंवार पुरुषार्थ और जगत् को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है ।।३।।

वही राजा उत्तम होता है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित, सुशील, जितेन्द्रिय होकर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करे और आचार्य हो सकता है, जो यथावत् ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है ।।४।।

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण जवान होके ही अपने सदृश कन्या से विवाह करें, वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण युवति हो, अपने तुल्य पूर्ण युवावस्थावाले पति को प्राप्त होवे ।।५।।

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों को शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है, तभी प्रकाशमान होता, उस में सम्पूर्ण दिव्यगुण निवास करते और सब विद्वान् उस से मित्रता करते हैं । वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख क्लेशों का नाश, सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रज्ञा को धारण करके, सब मनुष्यों के हित के लिए सब विद्याओं का प्रकाश करता है ।।६।।

ब्रह्मचर्यकालः

इस में छान्दोग्योपनिषत् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥१॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशतिवर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥२॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥३॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्राः अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥४॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥५॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवन-मष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते॥६॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥७॥

अर्थ—जो बालक को ५ पांच वर्ष की आयु तक माता, ५ पांच से ८ आठ तक पिता, ८ आठ से ४८ अड़तालीस, ४४ चवालीस, ४० चालीस, ३६ छत्तीस, ३० तीस तक अथवा २५ पच्चीस वर्ष तक तथा कन्या को ८ आठ से २४ चौबीस, २२ बाईस, २० बीस, १८ अठारह, अथवा १६ सोलह वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो, तभी (पुरुष वा स्त्री) विद्यावान् होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के व्यवहारों में अतिचतुर होते हैं ॥१॥

यह मनुष्य देह यज्ञ अर्थात् अच्छे प्रकार इस को आयु बल आदि से सम्पन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि २४ चौबीस

वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और १६ वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण, जैसे २४ चौबीस अक्षर का गायत्री छन्द होता है, वैसे करे, वह प्रातःसवन कहाता है । जिस से इस मनुष्य देह के मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं, जो बलवान् होकर सब शुभ गुणों को शरीर आत्मा और मन के बीच वास कराते हैं ।।२।।

जो कोई इस २५ पच्चीस वर्ष के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह वा विषयभोग करने का उपदेश करे, उस को वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि—देख, यदि मेरे प्राण मन और इन्द्रिय २५ पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जो कि आगे ४४ चवालीस वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है, उस को पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है। इसलिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूं कि जो इस शरीर प्राण अन्तःकरण और आत्मा के संयोगरूप सब शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के साधन करनेवाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य देह धारण के फल से विमुख रहूं ? और सब आश्रमों के मूल, सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म, और सब के मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महादुःखसागर में कभी डूबूं ? किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोगरहित होता है । इसलिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूंगा ।।३।।

और जो ४४ चवालीस वर्ष तक अर्थात् जैसा ४४ चवालीस अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है, तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है, कि जिस के आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती । और वह सब दुष्ट कर्म करनेवालों को सदा रुलाता रहता है ।।४।।

यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करनेवाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो, उस को ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि—जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता, **और विषय-सम्बन्धी भी अधिक आनन्द होता है, वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता ।** क्योंकि सांसारिक व्यवहार, विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं । इसलिए मैं इस सर्वोत्तम सुख-प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान्, बलवान्, आयुष्मान्, धर्मात्मा

होके सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊंगा । तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयम् और अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट कभी न करूंगा ।।५।।

अब ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त, जैसा कि ४८ अड़तालीस अक्षर का जगती छन्द होता है, वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या, पूर्ण बल, पूर्णप्रज्ञा, पूर्ण शुभ गुण, कर्म, स्वभावयुक्त, सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है ।।६।।

यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे, उस को ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि—अरे छोकरों के छोकरे ! मुझ से दूर रहो। तुम्हारे दुर्गन्ध रूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूं । मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूंगा । इस को पूर्ण करके सर्व रोगों से रहित, सर्वविद्यादि शुभ गुण, कर्म, स्वभाव सहित होऊंगा । इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे । जिस से मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ाके विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूं ।।७।।

चतस्त्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेति । तत्राषोडशाद् वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् आ चत्वारिंशतस्सम्पूर्णता । ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥१॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥२॥

—यह धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुतग्रन्थ का प्रमाण है ।।

अर्थ—इस मनुष्य देह की ४ चार अवस्था हैं—एक वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी सम्पूर्णता, चौथी किञ्चित् परिहाणि करनेहारी अवस्था है। इन में १६ सोलहवें वर्ष से आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष में पूर्ति वाली वृद्धि की अवस्था है । जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा, वह कुहाड़े से काटे वृक्ष वा दण्डे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चात्ताप करेगा । पुनः उस के हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा । दूसरी जो युवावस्था उस का आरम्भ २५ पच्चीसवें वर्ष से और पूर्ति ४० चालीसवें वर्ष में होती है । जो कोई इस को यथावत् संरक्षित न कर रक्खेगा, वह अपनी भाग्यशालीनता को नष्ट कर देवेगा। और तीसरी पूर्ण युवावस्था ४० चालीसवें वर्ष में होती है । जो कोई ब्रह्मचारी होकर पुनः ॠतुगामी, परस्त्रीत्यागी, एकस्त्रीव्रत, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा, वह भी बना-बनाया धूल में मिल जाएगा और चौथी ४० चालीसवें वर्ष से यावत् निर्वीर्य न हो, तावत् किञ्चित्

हानिरूप अवस्था है । यदि किञ्चित् हानि के बदले वीर्य की अधिक हानि करेगा, वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जाएगा और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित रक्खेगा, वह सर्वदा आनन्दित होकर सब संसार को सुखी कर सकेगा ।।१।।

अब इस में इतना विशेष समझना चाहिए कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एक-सा समय नहीं है, किन्तु जितना सामर्थ्य २५ पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है, उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में १६ सोलहवें वर्ष में हो जाता है । यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्यवाले होते हैं । इसलिए इस अवस्था में जो विवाह करना, वह अधम विवाह है ।।२।।

और जो १७ सत्रह वर्ष की स्त्री और ३० वर्ष का पुरुष, १८ अठारह वर्ष की स्त्री और ३६ वर्ष का पुरुष, १९ उन्नीस वर्ष की स्त्री और ३८ वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इस को मध्यम समय जानो ।

और जो २० बीस, २१ इक्कीस, २२ बाईस, २३ तेईस वा २४ चौबीस वर्ष की स्त्री और ४० चालीस, ४२ बयालीस, ४४ चवालीस, ४६ छयालीस और ४८ अड़तालीस वर्ष का पुरुष होकर विवाह करे, वह सर्वोत्तम है।

हे ब्रह्मचारिन् ! इन बातों को तू ध्यान में रख, जो कि तुझ को आगे के आश्रमों में काम आवेंगी । जो मनुष्य अपने सन्तान, कुल, सम्बन्धी और देश की उन्नति करना चाहें, वे इन पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातों का यथावत् आचरण करें ।।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ।।१।।
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ।।२।।
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ।।३।।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ।।४।।
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ।।५।।
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ।।६।।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥७॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥८॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥९॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१०॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१३॥
सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥१४॥
वेदमेव सदाभ्यस्येत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१५॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१७॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥१८॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥१९॥

—मनु०॥

अर्थ—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्र का मार्ग) हाथ, पग, वाणी—ये १० इन्द्रियां इस शरीर में हैं ॥१॥

इनमें कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं ॥२॥

ग्यारहवां इन्द्रिय मन है । **वह अपने स्मृति आदि गुणों से दोनों प्रकार के इन्द्रियों से सम्बन्ध करता है, कि जिस मन के जीतने में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं ॥३॥**

जैसे सारथि घोड़े को कुपथ में नहीं जाने देता, वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करनेवाले विषयों में जाते हुए इन्द्रियों को रोकने में सदा प्रयत्न किया करे ॥४॥

ब्रह्मचारी इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसन्देह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त १० दश इन्द्रियों को वश में करके ही पश्चात् सिद्धि को प्राप्त होता है ॥५॥

जिस का ब्राह्मणपन (सम्मान नहीं चाहना वा इन्द्रियों को वश में रखना आदि) बिगड़ा वा जिस का विशेष प्रभाव (वर्णाश्रम के गुण, कर्म) बिगड़े हैं, उस पुरुष के वेद पढ़ना, त्याग (संन्यास) लेना, यज्ञ (अग्निहोत्रादि) करना, नियम (ब्रह्मचर्य्याश्रम आदि) करना, तप (निन्दा-स्तुति और हानि-लाभ आदि द्वन्द्व का सहन) करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते । इसलिए ब्रह्मचारी को चाहिए कि अपने नियम-धर्मों का यथावत् पालन करके सिद्धि को प्राप्त होवे ॥६॥

ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियों को वश में कर, और आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किञ्चित् किञ्चित् पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे ॥७॥

बुद्धिमान् ब्रह्मचारी को चाहिये कि यमों का सेवन नित्य करे, केवल नियमों का नहीं । क्योंकि यमों[१] को न करता हुआ और केवल नियमों[२] का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है । इसलिए यम सेवनपूर्वक नियमसेवन नित्य किया करे ॥८॥

अभिवादन करने का जिसका स्वभाव, और विद्या वा अवस्था में वृद्ध पुरुषों का जो नित्य सेवन करता है, उस की अवस्था विद्या, कीर्ति और बल इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है । इसलिए ब्रह्मचारी को चाहिए कि आचार्य, माता-पिता, अतिथि, महात्मा आदि अपने बड़ों को नित्य नमस्कार और सेवन किया करे ॥९॥

---

१. **अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।** निर्वैरता, सत्य बोलना, चोरीत्याग, वीर्यरक्षण और विषयभोग में घृणा—ये ५ पांच यम हैं ।

२. **शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।**
शौच, सन्तोष, तपः (हानि-लाभ आदि द्वन्द्व का सहना), स्वाध्याय (वेद का पढ़ना), ईश्वरप्रणिधान (सर्वस्व ईश्वरार्पण)—ये ५ पांच नियम कहाते हैं ।

अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा, वह निश्चय करके बालक होता, और जो मन्त्रद अर्थात् दूसरे को विचार देनेवाला, विद्या पढ़ा, विद्याविचार में निपुण है, वह पिता स्थानीय होता है । क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषों ने अज्ञ जन को बालक कहा, और मन्त्रद को पिता ही कहा है । इस से प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर ज्ञानवान्, विद्यावान् अवश्य होना चाहिए ।।१०।।

धर्मवेत्ता ऋषिजनों ने न वर्षों, न पके केशों वा झूलते हुए अङ्गों, न धन और न बन्धुजनों से बड़प्पन माना । किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वाद-विवाद में उत्तर देनेवाला अर्थात् वक्ता हो, वह बड़ा है । इस से ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर विद्यावान् होना चाहिए । जिस से कि संसार में बड़प्पन, प्रतिष्ठा पावें और दूसरों को उत्तर देने में अति निपुण हों ।।११।।

उस कारण से वृद्ध नहीं होता कि जिस से इस का शिर झूल जाय, केश पक जावें, किन्तु जो जवान भी पढ़ा हुआ विद्वान् है, उस को विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है । इस से ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ।।१२।।

जैसे काठ का कठपुतला हाथी वा जैसे चमड़े का बनाया हुआ मृग हो, वैसे बिना पढ़ा हुआ विप्र अर्थात् ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन होता है । उक्त वे हाथी, मृग और विप्र तीनों नाममात्र धारण करते हैं । इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिए ।।१३।।

ब्राह्मण विष के समान उत्तम मान से नित्य उदासीनता रक्खे और अमृत के समान अपमान की आकांक्षा सर्वदा करे । अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के लिये भिक्षामात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे ।।१४।।

द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादिकों में उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्या करता हुआ वेद ही का अभ्यास करे । जिस कारण ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन को वेदाभ्यास करना इस संसार में परम तप कहा है, इस से ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर अवश्य वेदविद्याध्ययन करे ।।१५।।

जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है, वह जीवता ही अपने वंश के साथ शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है। इस से ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर वेदविद्या अवश्य पढ़े ।।१६।।

जैसे फावड़ा से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है, वैसे गुरु की सेवा करनेवाला पुरुष गुरुजनों ने जो पाई हुई विद्या है, उस को प्राप्त होता है । इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर गुरुजन की

सेवा कर उन से सुने और वेद पढ़े ।।१७।।

उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या पावे तो ग्रहण करे । नीच जाति से भी उत्तम धर्म का ग्रहण करे । और निन्द्य कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्रीजन का ग्रहण करे, यह नीति है । इस से गृहस्थाश्रम से पूर्व-पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े, उत्तम धर्म सीखे । और ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करे । क्योंकि ।।१८।।

विष से भी अमृत का ग्रहण करना, बालक से भी उत्तम वचन को लेना और नाना प्रकार के शिल्प काम—सब से अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिएँ । इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर देश-देश पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे ।।१९।।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः, तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्।।१।।

—तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ११।।

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो ब्रह्म भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः।।२।।

—तैत्तिरी० प्रपा० १० । अनु० ८।।

अर्थ—हे शिष्य ! जो आनन्दित, पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण-रहित, न्याय धर्माचरणसहित कर्म हैं, उन्हीं का सेवन तू किया करना, इन से विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना । हे शिष्य ! जो तेरे माता-पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्मयुक्त उत्तम कर्म हैं, उन्हीं का आचरण तू कर । और जो हमारे दुष्ट कर्म हों, उनका आचरण कभी मत कर । हे ब्रह्मचारिन् ! जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं, उन्हीं के समीप बैठना, सङ्ग करना, और उन्हीं का विश्वास किया कर ।।१।।

हे शिष्य ! तू जो यथार्थ का ग्रहण, सत्य मानना, सत्य बोलना, वेदादि सत्यशास्त्रों का सुनना, अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना, श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, क्रोधादि के त्याग से शान्त रहना, विद्या आदि शुभ गुणों का दान करना, अग्निहोत्रादि और विद्वानों का सङ्ग कर । जितने भूमि, अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोकों में पदार्थ हैं, उन का यथाशक्ति ज्ञान कर । और योगाभ्यास, प्राणायाम, एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना कर । ये सब कर्म करना ही तप कहाता है ।।२।।

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्या० । दमश्च स्वाध्या० । शमश्च स्वाध्या० । अग्नयश्च स्वाध्या० । अग्निहोत्रं च स्वाध्या० । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः। तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥३॥

—तैत्तिरी० प्रपा० ७। अनु० ९ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन् ! तू सत्य धारण कर, पढ़ और पढ़ाया कर और सत्योपदेश करना कभी मत छोड़ । सदा सत्य बोल पढ़ और पढ़ाया कर । हर्ष-शोकादि छोड़, प्राणायाम योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर । अपने इन्द्रियों को बुरे कामों से हटा अच्छे कामों में चला, विद्या का ग्रहण कर और कराया कर । अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और करा तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर । अग्निविद्या के सेवनपूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर । अग्निहोत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर । 'सत्यवादी होना तप'—**सत्यवचा राथीतर आचार्य;** 'न्यायाचरण में कष्ट सहना तप'—**तपोनित्य पौरुशिष्टि आचार्य;** 'और धर्म में चलके पढ़ना-पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है' यह नाक **मौद्गल्य** आचार्य का मत है । और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप, यही पूर्वोक्त तप है, ऐसा तू जान ॥३॥

इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक का पिता करे।

तत्पश्चात् घर को छोड़ गुरुकुल में जावे । यदि पुत्र हो तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें । यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को स्त्री, पाणिनिमुनिकृत वर्णोच्चारणशिक्षा १ एक महीने के भीतर पढ़ा देवें । पुनः पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी का पाठ पदच्छेद अर्थसहित ८ आठ महीने में, अथवा १ एक वर्ष में पढ़ा कर, धातुपाठ और १० दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी । पुनः पाणिनिमुनिकृत लिङ्गानुशासन और उणादि, गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थ ण्वुल् और तृच् प्रत्ययाद्यन्त सुबन्तरूप छः ६ महीने के भीतर सधवा देवें । पुनः दूसरी वार अष्टाध्यायी पदार्थोक्ति समास शङ्का-समाधान उत्सर्ग अपवाद* अन्वयपूर्वक पढ़ावें । और संस्कृतभाषण

---

* जिस सूत्र का अधिक विषय हो वह उत्सर्ग और जो किसी सूत्र के बड़े विषय में से थोड़े विषय में प्रवृत्त हो वह अपवाद कहाता है ।

का भी अभ्यास कराते जायें। ८ आठ महीने के भीतर इतना पढ़ना–पढ़ाना चाहिए ।

तत्पश्चात् पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य, जिस में वर्णोच्चारणशिक्षा, अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिगण, लिङ्गानुशासन इन ६ छः ग्रन्थों की व्याख्या यथावत् लिखी है, डेढ़ वर्ष में अर्थात् १८ अठारह महीने में इस को पढ़ना–पढ़ाना। इस प्रकार शिक्षा और व्याकरणशास्त्र को ३ तीन वर्ष ५ पांच महीने वा नौ महीने, अथवा ४ वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृतविद्या के मर्मस्थलों को समझने के योग्य होवे ।

तत्पश्चात् यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त तथा कात्यायनादि मुनिकृत कोश १।। डेढ़ वर्ष के भीतर पढ़के, अव्ययार्थ आप्तमुनिकृत वाच्यवाचक सम्बन्ध रूप *यौगिक, योगरूढ़ि और रूढ़ि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत् जानें । तत्पश्चात् पिङ्गलाचार्यकृत पिङ्गलसूत्र छन्दोग्रन्थ भाष्यसहित ३ तीन महीने में पढ़ और ३ तीन महीने में श्लोकादिरचनविद्या को सीखें । पुनः यास्कमुनिकृत काव्यालङ्कारसूत्र, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यार्थ अन्वयसहित पढ़के, इसी के साथ मनुस्मृति, विदुरनीति और किसी प्रकरण में से १० सर्ग वाल्मीकीय रामायण के, ये सब १ एक वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें । तथा १ एक वर्ष में सूर्यसिद्धान्तादि में से कोई १ एक सिद्धान्त से गणितविद्या, जिस में बीजगणित, रेखागणित और पाटीगणित, जिस को अङ्कगणित भी कहते हैं, पढ़ें और पढ़ावें । निघण्टु से लेके ज्योतिष पर्यन्त वेदाङ्गों को ४ चार वर्ष के भीतर पढ़ें ।

तत्पश्चात् जैमिनिमुनिकृत सूत्र पूर्वमीमांसा को व्यासमुनिकृत व्याख्यासहित, कणादमुनिकृत वैशेषिकसूत्ररूप शास्त्र को गौतममुनिकृत प्रशस्तपादभाष्यसहित, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित गौतममुनिकृत सूत्ररूप न्यायशास्त्र, व्यासमुनि कृतभाष्यसहित, पतञ्जलिमुनिकृत योगसूत्र योगशास्त्र, भागुरिमुनिकृत भाष्ययुक्त कपिलाचार्यकृत सूत्रस्वरूप सांख्यशास्त्र, जैमिनि वा बौद्धायन आदि मुनिकृत व्याख्यासहित व्यासमुनिकृत शारीरकसूत्र तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० दश उपनिषद्, व्यासादिमुनिकृत व्याख्यासहित वेदान्तशास्त्र, इन ६ छः शास्त्रों को २ दो वर्ष के भीतर पढ़ लेवें ।

---

* यौगिक–जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे । जैसे पाचक याजकादि । योगरूढ़ि–जैसे पङ्कजादि । रूढ़ि–जैसे धन, वन इत्यादि ।

तत्पश्चात् बह्वृच् ऐतरेय ऋग्वेद का ब्राह्मण, आश्वलायनकृत श्रौत तथा गृह्यसूत्र* और कल्पसूत्र पदक्रम और व्याकरणादि के सहाय से छन्दः, स्वर, पदार्थ, अन्वय, भावार्थसहित ऋग्वेद का पठन ३ तीन वर्ष के भीतर करें । इसी प्रकार यजुर्वेद को शतपथब्राह्मण और पदादि के सहित २ दो वर्ष तथा सामब्राह्मण और पदादि तथा गान सहित सामवेद को २ दो वर्ष तथा गोपथ ब्राह्मण और पदादि के सहित अथर्ववेद को २ दो वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें । सब मिलके ९ नौ वर्षों के भीतर ४ चारों वेदों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिए ।

पुनः ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, जिस को वैद्यकशास्त्र कहते हैं, जिस में धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि मुनिकृत चरक आदि आर्षग्रन्थ हैं, इन को ३ तीन वर्ष के भीतर पढ़ें । जैसे सुश्रुत में शस्त्र लिखे हैं, बनाकर शरीर के सब अवयवों को चीर के देखें तथा जो उस में शारीरिकादि विद्या लिखी है, साक्षात् करें ।

तत्पश्चात् यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद, जिस को शस्त्रास्त्रविद्या कहते हैं, जिसमें अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं, जो इस समय बहुधा नहीं मिलते, ३ तीन वर्ष में पढ़ें और पढ़ावें ।

पुनः सामवेद का उपवेद गान्धर्ववेद, जिस में नारदसंहितादि ग्रन्थ हैं, उन को पढ़के स्वर, राग, रागिणी, समय, वादित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना आदि का अभ्यास यथावत् ३ तीन वर्ष के भीतर करें ।

तत्पश्चात् अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद, जिस को शिल्पशास्त्र कहते हैं, जिस में विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं, उन को ६ छः वर्ष के भीतर पढ़के विमान, तार, भूगर्भादि विद्याओं को साक्षात् करें ।

ये शिक्षा से लेके आयुर्वेद तक १४ चौदह विद्याओं को **३१ इकत्तीस** वर्षों में पढ़के महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें ।

॥ इति वेदारम्भसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

---

* ब्राह्मण वा जो सूत्र वेदविरुद्ध हिंसापरक हो, उस का प्रमाण न करना।